Shikshan Sanshodhan : Journal of Arts, Humanities and Social Sciences ISSN(o): 2581-6241
Monthly, Peer-Reviewed, Refereed, Indexed Journal Impact Factor: 6.471
Volume - 6, Issue - 2, February - 2023 Publication Date: 28/02/2023

DOIs:10.2018/SS/202302005 --:-- Research Paper / Article

उराँव जनजातियों का लोक साहित्य

विपिन कुमार
शोध छात्र , समाजशास्त्र विभाग, डी.ए.वी.पी.जी.कॉलेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश, भारत
ईमेल - vipinkdav@gmail.com

शोध सारांश : लोक साहित्य किसी भी समाज की भाषा और संस्कृति का एक हिस्सा है। संस्कृति एक जीवित प्रक्रिया है, जो लोक के स्तर पर अंकुरित होती है साथ ही पूरे लोक को संस्कारित करती है एवं विशिष्ट स्तर पर अनेक लोकों के विविध पुष्पों द्वारा एक सुंदर माला निर्मित करती है। इसी तरह लोक-स्तर पर वह लोक-संस्कृति है, जिसमें जनसामान्य के आदर्श, विश्वास, रीतिरिवाज आदि व्यक्त होते हैं, जबकि विशिष्ट स्तर पर वह संस्कृति कही जाती है, जिसमें परिनिष्ठित मूल्य आचार-विचार, रहन-सहन के ढ़ंग आदि संघटित रहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि उराँवों का लोक संस्कृति और परिनिष्ठित संस्कृति, दोनों एक-दूसरे से संग्रहित होती हुई भी भिन्न हैं। लोक साहित्य, जिसे लोक कथाओं या मौखिक परंपरा भी कहा जाता है, बिना लिखित भाषा वाली संस्कृतियों की विद्या (पारंपरिक ज्ञान सामाजिक रीतियाँ) है। यह गद्य और शब्द से संचरित होता है, जैसा कि गद्य और पद्य की कथाओं, कविताओं और गीतों, मिथकों, नाटकों, रीति-रिवाजों, कहावतों, पहेलियों और इसी तरह के लिखित-अलिखित साहित्य इसमें समाहित होता है। इस प्रकार उराँव समाज को अपने लोक साहित्य पर गर्व है।

मुख्य शब्द : लोक साहित्य, संस्कृति, कुड़ुख गीत, लोक कथा।

1. लोक साहित्य का परिचय :

एक समय वह भी रहा जब मनुष्य प्रकृति के रम्य प्रांगण में उन्मुक्त विहार करता था और प्रकृति देवी का उपासक था। उसका जीवन, विचार, कार्यशैली, रहन-सहन, बोल-चाल स्वाभाविकता से मिश्रित था। वह आडम्बर तथा कृत्रिमता से कोसों दूर रहकर अपने चित्त में आह्लाद लिए मन के अनुरंजन के लिए साहित्य का सृजन करता था। आज भी साहित्य सृजन हो रहा है परन्तु दोनों युगों के साहित्य में जमीन-आसमान का अन्तर है। वर्तमान साहित्य वादों और रूढ़ियों से जकड़ा हुआ है। कविता अंलकार प्रधान और शास्त्रीय नियमों से बंधी हुई है। कथाओं में शिल्पगत नवीन प्रयोग किये जा रहे हैं तथा नाटकों में नाटकीय नियमों का पालन करना पड़ रहा है। दोनों युगों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत करते हुए राहुल सांस्कृत्यायन ने लिखा है, परन्तु इससे भिन्न स्थिति प्राचीन युग की दिखाई देती है। उस युग के साहित्य का प्रधान गुण था स्वाभाविकता, स्वच्छदंता तथा सरलता। वह साहित्य उतना ही स्वाभाविकता दर्शाता है जितना जंगल में खिलने वाला फूल, उतना ही स्वच्छंद था जितनी आकाश में उड़ने वाली चिड़िया, उतना ही सरल तथा पवित्र था जितनी गंगा की धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट तथा सुरक्षित रह गया है वही हमें लोक-साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।[1]

भारत एक सांस्कृतिक विविधता वाला देश है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी ज्ञान प्रणाली है। स्वतंत्रता के बाद से लोक साहित्य के संग्रह, संरक्षण, विश्लेषण और अध्ययन ने भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में बहुत अधिक ध्यान दिया है। साहित्य मानव मन की प्रतिछवि है। यह मानव मन में आने वाले भाव, उतार-चढ़ाव, सामाजिक स्थितियों तथा विभिन्न परिस्थितियों का माध्यम है। साहित्य को दो वर्गों में विभाजित किया गया है - शिष्ट साहित्य और लोक साहित्य। लोक साहित्य वास्तव में एक लोक जीवन की उपज है। लोक साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोक साहित्य उतना ही प्राचीन है जितना की मानव क्योंकि इसमें जनजीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग प्रत्येक समय और प्रकृति में सभी कुछ समाहित है। लोक साहित्य एक तरह से आमजन की संपत्ति है। इसे लोक संस्कृति का दर्पण भी कहा जाता है। जन संस्कृति का जैसा सच्चा एवं सजीव चित्रण लोक साहित्य में मिलता है वैसा अन्य कहीं नहीं मिलता। सरलता और स्वभाविकता के कारण यह अपना एक विशेष महत्व रखता है। साधारण जनता का हंसना, रोना खेलना गाना जिन शब्दों में अभिव्यक्त हो सकता है वह सब कुछ लोक साहित्य में आता है।

लोक साहित्य को लोक संस्कृति का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग माना जा सकता है क्योंकि इसमें लोक संस्कृति के सभी अंगों की झलक मिलती है। किसी भी समाज की मान्यताएँ, अंधविश्वास, त्योहार, रीति-रिवाज, गीत, गाथा, क़िस्से-कहानियाँ, कहावतें, मुहावरे आदि का परिचय हमें लोक साहित्य के द्वारा ही मिल सकता है। धीरेंद्र वर्मा के अनुसार 'वास्तव में लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जो भले ही किसी व्यक्ति ने गढ़ी हो पर आज इसे सामान्य लोक समूह अपनी ही मानता है'। इसमें लोकमानस प्रतिबिंबित

रहता है। डॉ. सत्येन्द्र के अनुसार लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना अथवा अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है।[2]

3. उराँवों के लोक साहित्य का स्वरूप :

लोक साहित्य एक शास्त्र है जो अपने अपने कई शास्त्र और एक बड़े इतिहास को समाहित किए हुए हैं। विद्वानों ने लोक साहित्य के स्वरूप को निम्नलिखित रूपों में स्पष्ट किया है-

1. लोक साहित्य और लोक का साहित्य है जो सभ्यता की सीमा से बाहर है और सभ्य समाज में जिस का स्थान नहीं है।
2. यह जंगली जातियों का साहित्य है यहां एक शब्द का तात्पर्य उन लोगों के साहित्य से है जो आदिम परंपराओं को सुरक्षित रखे हुए हैं।
3. लोक साहित्य ग्रामीण साहित्य है इस साहित्य पर समस्त जनसमूह का अधिकार है।
4. लोक साहित्य समस्त लोक के राग-विराग, हर्ष-विषाद, सुख-दुख, जीवन-मरण की सहज एवं सरस अभिव्यक्ति है।यह साहित्य सर्व व्यापक है। यह है उससे अधिक राष्ट्रव्यापी है और जितना राष्ट्रव्यापी है उससे भी कहीं अधिक अंतरराष्ट्रीय है।
5. यह संपूर्ण मानव जाति की विरासत है। लोक साहित्य जनता द्वारा रचित, जनता का, जनता के लिए साहित्य है।
6. लोक साहित्य में किसी व्यक्ति विशेष की नहीं, अपितु समस्त जगत के कल्याण की भावना समाहित होती है।

4. लोक साहित्य का विभाजन :

लोक साहित्य को मुख्यतः पाँच भागों में विभक्त कर सकते हैं -

- लोक गीत
- लोक गाथा
- लोक कथा
- लोक सुभाषित
- लोक नाट्य

- **लोक गीत**

लोक के प्रत्यक्ष जीवन को जाने बिना हम मानव जीवन को पूरी तरफ नहीं समझ सकते। ऋषियों के वैदिक गीत, वैदिक नाम जिस अनादि, अनंत, अक्षर तत्व का गान करते हैं, उसी के परिमित अंश का क्रन्दित मूर्त रूप उन लोक गीतों में है जो मानवीय कंठों से उसी दिव्य उल्लास के आनंद पूर्ण भाव लिए हुए क्षेत्र में प्रस्फुटित हुए हैं। इस प्रवाह की दृष्टि से लोक गीतों की महिमा का अनुभव किया जा सकता है। लोक गीत रचे नहीं जा सकते, ये प्रकृति के गान हैं जो दूर से आते हैं। ये गान मस्तिष्क से नहीं, हृदय से निकलते हैं। प्राचीन काव्य की नैसर्गिक वृत्ति, सरलता और स्वच्छन्दता का आनंद यदि हमें लेना है तो वह लोक गीतों में ही मिल सकेगा। मंत्रों से भी अधिक व्यापक लोक गीत घरों के भीतर और बाहर भी मानव जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं। जीवन में जो उल्लास और करूणा से भरा हुआ क्षेत्र है, जो प्रेम और त्याग का संयोग और वियोग का गाढ़ा रंग है, वह इन गीतों में मिलता है। लोक गीतों की परम्परा मानव समाज के जन्म से चली आ रही है। इन गीतों में लोक जीवन के सभी तत्व दिखाई देते हैं। ये मानव हृदय की सच्ची भावनाओं को अत्यंत सीधे-सादे ढंग पर व्यक्त करते है। ये हमारी संस्कृति के अनमोल धरोहर हैं, हम इनसे विमुख हो गए थे किन्तु आज उसे फिर सहेजने लगे हैं। उराँव लोक गीतों की प्रमुख विशिष्टताओं का चित्रण करते हुए यह कहा जा सकता है कि इनमें निम्नांकित तत्व मिलते हैं। जिसमें कुछ निम्नवत है -

1. ये आत्मिक आनंद के साथ-साथ मनोरंजन के साधन हैं।
2. उराँव लोक गीतों से भाषा के प्रति प्रेम जागृत होती है।
3. उराँव जनजातियों के लोक गीतों में संगीतात्मकता, मोहकता तथा मधुरता का उद्‌भुत समन्वय मिलता है।
4. उराँवों में ग्रामीण जीवन के परिचय के साथ-साथ उनकी कला का चित्रण मिलता है तथा जीवन की यथार्थता झलकती है। इनमें स्वाभाविकता एवं सरलता के साथ ही साथ प्राचीन आदर्शों की झलक भी दिखाने को मिलती है।
5. उराँव जनजातियों के कुँड़ुख लोक गीतों में अवधी, भोजपुरी, सरगुजिहा, छत्तीसगढ़ी आदि लोक गीतों की छाप भी प्रतिदर्शित होती है।[3]

उराँव (कुड़ुख) लोकगीतों का वर्गीकरण

लोक साहित्य के अन्तर्गत लोक गीतों का प्रमुख स्थान है। न जीवन के साथ निकटतम सम्पर्क के कारण इसकी प्रधानता स्वाभाविक है। लोक गीत विभिन्न ऋतुओं तथा विभिन्न संस्कारों के अवसर पर गाये जाते हैं। विभिन्न जातियां गीत विशेष का गायन करती हैं। विभिन्न गृह कार्य करते समय परिश्रम अन्य थकावट को दूर करने के लिए भी गीत गाये जाते हैं। इस प्रकार लोक गीतों का श्रेणी विभाजन पाँच प्रकार से किया जा सकता है -

क) संस्कारों की दृष्टि से
ख) रसानुभूति की प्रणाली से[4]
ग) ऋतुओं तथा व्रतों के क्रम से

घ) विभिन्न जातियों के अनुसार
ड़) श्रम के आधार पर

जिस प्रकार मिलन को आतुर हृदय की उत्सुकता का चित्र अपनी सरलता के कारण और अधिक मोहक हो जाता है, उसे इस गीत में देखा जा सकता है –

गीत -

''का लगिन संवारो अंगा तोरा मैला भेल,
का लगिन नैना भरि लोर रे
का लगिन नैना भरि लोर।
अना बिनु संवारो,
अंका तोरा मैला भेल।
संवारों पिया बिनु नैना भरि लोर रे,
संवारों पिया बिनु नैना भरि लोर।''

केवल प्रेम और विरह ही नहीं, जीवन के अन्य पक्षों की भी मार्मिक अभिव्यक्ति करने की क्षमता लोक गीतों में होती है। अनेक गीतों जीवन के कटु यथार्थ में अभिव्यक्त हुए है, एक उदाहरण दृष्टव्य है -

''आयो जियत भारी बाबा जियत भारी
गेंन्दा फूल बगैचा लागय हो
गेंन्दा फूल बगैचा लागय।
आयो मरि गेला बाबा मरि गेला रे
गेंन्दा फूल उजाड़ों मेला रे,
गेंन्दा फूल उजाड़ो मेला।''[5]

- **लोक गाथा**

इस प्रकार के साहित्य में जनता अपने वीर पुरूषों के शौर्य पूर्ण कार्यों को स्मरण कर गा-गाकर आनन्द प्राप्त करती है। उनका यशोगान सबके मन में वीर रस का संचार करता है। ऐसे गीत लोक-गाथाओं की कोटि में रखे जा सकते हैं। ये गीत लंबे होते हैं। लोक गाथा-गायक कई-कई रात तक इन्हें गाते रहते हैं। यदि इनको साधारण जनता का महाकाव्य कहा जाय तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी।[6]

- **लोक कथाएं**

लोक कथाएं मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। कहानी कहने की प्रवृत्ति का इतिहास उतना ही पुराना है जितना स्वयं मनुष्य की वाणी का। इन लोक कथाओं में जीवन का अंतरंग झलकता है। जीवन, विश्वास, परम्परायें तो इनमें प्रतिबंधित है, साथ ही जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं है जो कथाओं में अवतरित न हुआ हो। धार्मिक नैतिक ऐतिहासिक और पौराणिक सभी प्रकार की कथाएं हमारे यहाँ प्रचलित हैं। रीति-रिवाज, व्रत, उत्सवों पर अनेकानेक कथाएं हम ग्रामीण पुरूषों एवं स्त्रियों के मुख से श्रवण करते हैं। इन कथाओं में न केवल मनोरंजन है वरन इनमें हमारी प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का रूप भी दिखाई पड़ता है। लोक जीवन का यथार्थ चित्रण में कथाएं ही प्रस्तुत करती हैं। लोक कथाओं में कोई न कोई उद्देश्य दिया हुआ है। प्राचीन काल में दृष्टांत के रूप में उपदेश देते समय ऐसी कथाओं का आश्रय अवश्य लिया जाता था। मानव जीवन के कई स्वरूपों व गुणों का तथा आदर्श जीवन का दिग्दर्शन हमें इन लोक कथाओं में मिलता है।

- **लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ तथा मुहावरे**

लोकोक्ति

लोकोक्ति, लोगों में प्रचलित ऐसे वाक्य या कथन होते हैं जो सामान्य कथन को विशेश आकर्षक, प्रामाणिक और सजीव बनाने के लिए प्रयुक्त होते हैं। साधारण बातचीत से लेकर उच्च साहित्य 'लोकोक्तियों' से ओत-प्रोत रहता है। सब लोक सामान्य बोल-चाल में भी उनका प्रयोग करते हैं। ग्रामीणों की भाषा में प्रयुक्त लोकोक्तियां कुछ अशिष्टता युक्त रहती हैं। स्थानीय बोली के प्रभाव से इसमें निरालापन प्रतीत होता है। मुलतः एक ही लोकोक्ति होती है। कुछ लोकोक्तियां स्थान विशेष में ही प्रचलित हैं, कुछ अन्य भाषाओं से भावार्थ रूप में स्वीकार कर जाती हैं। संस्कृत, अरबी तथा फारसी की अनेक लोकोक्तियां हिन्दी में आत्मसात कर ली गई हैं। यह जीवन के अनुभवों का निचोड़ के साथ-साथ भावनाओं को व्यक्त करने में उतनी ही सक्षम है जितनी भावभंगिमा। जैसे -

तंगहा केच्चका सरग मल हथरिई। - स्वयं मरे स्वर्ग नहीं दिखता।
ओंटा खदेदस गे पद्दा भर बिसाही। - एक बच्चे के लिए गाँव भर टोन ही।
मोखागे कुंडो अउ पीतागे बतासा। - साधारण भोजन खाना पर व्यंजन खाया बताना।
सझियारा अड्डो घर जिया जोनख दी। - साझे का बेल और घर दामाद (दोनों एक समान होते हैं)।

अल्ला सहराई तंग्हा खोलन। - कुत्ता सराहे अपनी पूँछ।
करिया आखर मलख बरोबर। - काला अक्षर भैंस बराबर।

लोकोक्ति साहित्य भाषा का आवश्यक एवं मनोरंजन विषय है। इसका अध्ययन करने से पता चलता है कि इसमें कितनी अनुभूति और कितना अधिक ज्ञान संचित है। लोकोक्तियों का वर्गीकरण पाँच भागों में किया जा सकता है।

1. सूक्तियां या सुभाषित
2. कहानी या घटना मूलक लोकोक्तियाँ
3. मुहावरा प्रधान लोकोक्तियाँ
4. अनुभव प्रधान लोकोक्तियाँ
5. दृष्टांत प्रधान लोकोक्तियाँ

लोक-पहेलियाँ, मुहावरे

लोक-पहेलियाँ मानव के ज्ञान वैभव का सुंदरतम प्रदर्शन है। पहेलियों की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। पहेलियों में शब्द संकोच के साथ अर्थ विस्तार का तत्व अंतर्निहित रहता है। पहेलियों में वस्तु के संबंध में कतिपय विशेषतओं से युक्त संकेत भरे रहते हैं। रूप, रंग, गुण और आकार-प्रकार भी सांकेतिक रूप से यक्त किये जाते हैं। उन्हें ही आधार मानकर प्रखर बुद्धि के माध्यम से उत्तर निकाले जा सकते हैं। गाँव में अवकाश के क्षणों में बालकों, बूढ़ों और नौजवानों सभी के लिए पहेलियाँ मनोरंजन का उत्कृष्ट साधन है। स्त्रियां भी उसे अपने मनोविनोद का साधन समझती हैं। मुहावरे तो भाषा के प्राण हैं। जो कथन को उचित ढंग से सुंदर बनाते हैं। उराँव जनजातियों के लोग कुँड़ुख में पहेलियों को 'खोंड़उस' कहते हैं। इन पहेलियों या बुझोव्वल के माध्यम से बुद्धि परीक्षा की जाती है। कुँड़ुख में उपलब्ध कुछ पहेलियाँ निम्ववत् हैं –

1. नहन पूरे नूं मिरगा मरे। (पे-न)
   नखपुर में हरिण मरता है - जूं।
2. खड़का कंक नाद गरजा रई। (बंदूक)
   सूखी लकड़ी भूत के समान गरजती है- बंदूक
3. ओंटा पच्चो गुन्डा-गुन्डा छिरी। (चाकी)
   एक बुढ़िया आटा, आटा टट्टी करती है - चक्की।
4. अम्म सिम्बी। (इंजी)
   पानी का सेम-मछली।
5. नान मेर तान मान। (मकरा जल्ली)
   महीन धागे फँसे हुए - मकड़े का जाला

इन पहेलियों में गूढ़ बातों को अनोखे ढंग से कहा गया है। अपद प्रकृति-पुत्रों ने अपना विभिन्न वस्तुओं संबंधी ज्ञान बड़े ही अनूठे और विचित्र ढंग से संकलित किया है। कई पहेलियाँ ऐसी हैं जिनका अर्थ समझना पढ़े-लिखे शिक्षितों की बुद्धि के बाहर की बात है। पहेलियों को विनोद पूर्ण ढंग से एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को देती आ रही है। इनमें कहीं गूढ़ता है, कहीं हास्य है, कहीं ज्ञान है। काव्यगत अलंकारों, अनुप्रासों तथा उपमा की छटा इसमें अपने आप आ गई है।

- **लोक नाट्य**

लोक नाट्य की विशेषता उसके लोकधर्मी स्वरूप में निहित है। लोक जीवन से उसका अभिन्न संबंध है। जीवन की सहज अभिव्यक्ति और प्रतिक्रियाओं का स्वतंत्र विकास नाट्य शैली में ही संभव है। उत्सवों, फसल कटाई के बाद उपलब्ध आनंद के क्षणों और विविध अवसरों पर प्रत्येक क्षेत्र में नृत्य एवं नाटिकाओं के प्रदर्शन देखे जाते हैं।

5. लोक-साहित्य की विषेशताएँ :

लोक साहित्य में लोक-मानस की अनुभूति पूर्ण विचारों की श्रृंखला बद्ध अभिव्यक्ति होती है। जन-मानस की अनुभूति की स्तर की नहीं होती। उसमें तो जीवन के कड़वे-मीठें घूंट का अनुभव जन-रस सन्निहित होता है। लोक साहित्य का सीधा सम्पर्क 'लोक' से होता है। अतः लोक के विचार उसमें स्थान प्राप्त करते हैं। इस विशिष्ट संबंध के कारण लोक-साहित्य की कुछ विशेशताएँ उपलब्ध हो गई है।[7] कृष्णदास के अनुसार लोक-साहित्य में मूल मानव बोलता है, साथ ही वह युग-युग में बदलती बोलियों को भी मुखरित करता है। उसकी व्यापकता में कमी नहीं आती। उसकी अनंतता सदैव अक्षुण्ण रहती है। इस साहित्य में भारतीय संस्कृति की आधार शिला लोक संस्कृति प्रतिबंधित होती है। सही अर्थों में लोक-साहित्य में विशेषतया लोक गीतों में भारत की आत्मा बोलती है।[8]

किसी देश की संस्कृति वहाँ के लोक-साहित्य में सुरक्षित रहती है। धार्मिक सामाजिक, राजनैतिक और अन्य सभी प्रकार के अवसरों पर लोक साहित्य, लोक-संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में उपस्थित होता है। लोक-साहित्य लोक-संस्कृति की बहुमूल्य धरोहर है। लोक-साहित्य का भंडार अत्यंत समृद्ध है। साहित्यिक भाषा ने लोक भाषा के बहुत से शब्दों को आत्मसात किया है। फिर

साहित्यकारों में नहीं दिखाई पड़ती। यदि हम लोक-साहित्य का सहारा ले तों हमें ऋतु, कृषि और अन्य विषयों के लिए बहुत से उपयोगी शब्द मिल सकते हैं।

विशेशताएँ

- लोक साहित्य में आदिम परंपराएँ विश्वास, रीति-रिवाज आदि का समावेश होता है। भारत धर्म प्राण देश है। अतः उसके प्रत्येक क्षेत्र में धर्म की प्रधानता दिखाई देती है। देवी, देवताओं के प्रति आदर की भावना व विश्वास उनके लोक गीतों में दिखाई देती है। कुँड़ुख लोक गीतों ने भी इसी भावना की अभिव्यक्ति दिखाई देती है -

भावों का एकादसी करम गाड्य रे
दुतिया में रथा चलय।
ई पद्दा ही पाहन नहतो करम गाड्य रे
रजा ठाकुर रधा चलाय।
कंक हौ काटी रथा जनाय रे,
रधा ऊपरै जगरनाथ।

'मादो' एकादशी में 'करम' की स्थापना करते हैं तथा द्वितीया को रथ चलाया जाता है। इस गाँव के मुखिया 'करम' शाखा गाड़ते हैं और ठाकुर राजा रथ चलाते हैं। लकड़ी को काटकर रथ बनाया जाता है। रथ के ऊपर जगत के स्वामी जगन्नाथ विराजमान रहते हैं। जिनकी आराधना जनमानस अपने सर्वत्र कल्याण हेतु करता है।

- लोक साहित्य की कृतियों में लेखक अथवा कवि का नाम नहीं होता। यह देखकर अक्सर कह दिया जाता है कि इनका कोई रचयिता ही नहीं थी जबकि वास्तविकता यह होती है कि रचयिताओं के नाम उनकी रचनाओं में इसलिए नहीं जुड़ सके क्योंकि उनकी रचनाएँ अलिखित थी। वे रचनाएँ जन-मानस के मस्तिष्क एवं जिह्वा में प्रतिष्ठित रहीं। अतः क्रमशः मूल लेखकों, कवियों, रचयिताओं का नाम छूटने लगा। कालान्तर में यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढ़ गई कि गायक दलों ने बिना विवेचन किये गीत का गायन करना प्रारंभ कर दिया जिससे भिन्न-भिन्न कवि तथा रचयिताओं की रचना एक हो गई। दो समकालीन प्रसिद्ध कवियों-गायकों की रचना के मध्य अन्तर उपस्थित करना कठिन कार्य हो गया।9

कुँड़ुख लोक गीतों में भी यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। कुड़ुख भाषी क्षेत्र में जो रचयिता कवि थे उनकी रचना तथा निकट के अन्य भाषा -भाषी क्षेत्र के कवि की रचना दोनों ही आपसें में घुल-मिल गई है। कुड़ुख गीतों में मूल शब्द के साथ-साथ दूसरी-तीसरी पंक्ति में अन्य भाशा के षब्द दिखाई देते हैं। कुड़ुख लोक गीतों में कहीं भी रचयिताओं का नाम नहीं मिलता।

गंगा न हाये गेले राजा, ढाल तरवार बिसाईर गेले,
भले भले उचित मेले, ढाल तरवार बिसाईर गेले।

'हे राजा' ! आप गंगा स्नान करने गए। वहाँ से वापस आने पर ढाल-तलवार को भूल गए। यह बहुत अच्छा हुआ कि आपका मन उससे उब गया और आप ढाल-तलवार को वहाँ भूल आए।

- लोक-साहित्य का रूप परंपरित तथा मौखिक होता है। वाणी और श्रुति उसको सजीव रखती है। वैदिक ऋचाओं की भाँति लोक गीत भी जन समाज की परंपरा से जीवित है। लोक गीतों में आवृत्ति होती है। इससे यह लाभ होता है कि इन्हें श्रोता समाज व नव सिखिये गायक भी सहजता से श्रवण कर स्मरण कर सकते हैं। कुँड़ुख लोक गीतों में भी यह आवृत्ति की परंपरा परिलक्षित होती है -

चरियों कोना झंडा गाड़ाले रजा
अखेड़ा भले शोभय,
आघो राति झंडा गाड़ाले रजा
अखेड़ा भले शोभय।

राजा तुमने चारों कोनों पर झंडा गड़वा दिया, जिससे यह नृत्य स्थल बहुत सुंदर दिखाई दे रहा है। अर्द्ध रात्रि में राजा तुमने झंडा गड़ा दिया, जिससे नृत्य स्थल सुन्दर दिखाई दे रहा है। यहाँ 'अखेड़ा भले शोभय' की दूसरी तथा चौथी पंक्ति में पुनरावृत्ति दिखाई देती है।

- लोक साहित्य में सर्व व्यापकता होती है। इसके अन्तर्गत क्रिया गीत से मेले-व्योहारों के गीतों तक, श्रंगृार से लेकर प्रिय आगमन की प्रतीक्षा में रो-रो कर विरह में दिन काटती हुई विरहिणी की करूण व्यथा का भी सहज चित्रण प्राप्त होता है। जीवन की असारता के गति लोक मानस कितना जागृत है, यह उसके गीतों में दिखाई देता है। कृँड़ुख लोक गीतों में भी 'विरहिणी की प्रतीक्षा तथा जीवन की असारता से संबंधित प्रसंग मिलते हैं, जो निम्नवत है –

अ) **विरहिणी की प्रतीक्षा**

मोरा मंईया आएल, परदेस हेराए गेल रे,
हावाल कहू रे कोवा हो, हावाल कहू रे कोवा,
धिरिजा धरू धिरिजा करू बहनी
तोहारो पिया आई जतो।

विरहिणी कौआ पक्षी को संबोधित करते हुए कहती है- 'हे कौए! मेरे प्रिय कब तक आएँगें। वे परदेश को चले गये हैं। हे कौए। तुम उनका समाचार कहो?' कौआ उत्तर देता है - हे बहन! तुम धैर्य धारण करो, तुम्हारे प्रिय शीघ्र ही आएँगे।'

ब) जीवन की असारता का चित्रण

जियत भर हंसमुखी खेलब सखी झुमरी,
मरले तो बड़ा रे पछताब सखी झुमरी,
बना केरा कठिया, डिह केरा अगिया सखी झुमरी,
जर जरा हेहान पोड़ाए सखी झुमरी,
जर जरा क्या न पोड़ाए सखी झुमरी।।

'जब तक जीवित हो तक तक हे सखी खेल कूल का आनंद उठा लो। मरने पर पश्चाताप होगा। लकड़ी की चिता बनाकर (लोग) इस शरीर को जला देगें। यह शरीर जल कर राख हो जाएगा। मृत शरीर फिर जीवित नहीं होगा।'

- लोक-साहित्य में यथार्थवाद एवं आदर्शवाद का बड़ा ही सुंदर सामंजस्य उपलब्ध होता है। इसमें एक ओर जहाँ वर्तमान युग एवं सामयिक जीवन की विभीषिका दिखाई देती है, तो दूसरी ओर आदर्श श्रेष्ठ कल्पना युक्त स्वप्निल संसार की आकांक्षा दिखाई देती है। लोक-साहित्य में दोनों का समान रूप से मिश्रण उपलब्ध होता है।
- लोक-साहित्य में काव्यत्व की प्रचुरता दिखाई देती है। लोक-साहित्य में रस की प्राप्ति ही न ही होती, प्रत्युत यह तो स्वयं इस से सिक्त रहता है। अलंकार तो भावों एवं शब्दों का अनुकरण करते हुए दृष्टिगत होते हैं।
- कुँड़ुख लोक साहित्य में सामान्य जनता की धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के समय पक्षों का रमणीय एवं आकर्षक चित्रण उपलब्ध होता है।

6. निष्कर्ष :

उराँव लोक साहित्य अत्यंत समृद्ध है। लोकगीतों, लोक कथाओं, लोकोक्तियों एवं पहेलियों के रूप में उराँवों ने अपने पूर्वजों की थाती को सहेज कर रखा है। यही कारण है कि इनकी सभ्यता संस्कृति, धर्म एवं इतिहास अपने आप में अनूठा और अक्षुण्ण है। उराँव का इतिहास इनके लोक गीतों और लोक कथाओं में दिग्दर्शित होते हैं। लोक-साहित्य के कसौटी पर खरे उतरने वाले अन्यान्य भाषा के लोक-साहित्य की भांति कुड़ुख का लोक-साहित्य भी पर्याप्त संपन्न है। अरण्य वासी उराँव अपनी लोक-भाषा, लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, मुहावरे, कहावतें, पहेलियां, इत्यादि को आदिकाल से चली आती वंशानुगत परम्परा को संजोये रखे हैं। वे इन्हें अपना सांस्कृतिक धरोहर मानते हैं और इसके प्रति अपनी सच्ची निष्ठा भी रखते हैं।

सन्दर्भ सूची :

1. डॉ. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृष्ठ 4-5।
2. डॉ. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृष्ठ 3 ।
3. सत्यव्रत सिन्हा, भोजपुरी लोक गाथा की भूमिका, पृष्ठ 5.
4. डॉ. श्याम परमार, भारत के लोक नृत्य, पृश्ठ 15।
5. डब्ल्यू जी., आर्चार-लील खो-रआ ख़ेख़ेल (पहला-भाग), पृष्ठ 274-275।
6. श्री श्यामचरण दुबे, मानव और संस्कृति (1982), नई दिल्ली, पृष्ठ 242।
7. रवीन्द्र भ्रमर, लोक-साहित्य की भूमिका (1991), साहित्य सदन, कानपुर, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 11।
8. उपाध्याय, कृष्णदेव. लोक-संस्कृति की रूपरेखा (2009 संस्करण), इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन, पृष्ठ 24।
9. कृष्णदास, लोक गीतों की सामाजिक व्याख्या, पृष्ठ 16।